BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 3, Issue 2, April-June, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

संविधान निर्मात्री सभा के संचालन में डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की भूमिका

भोलेन्द्र कुमार (शोधार्थी) नेट-जेआरएफ
इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना बिहार

सारांश:

भारतीय संविधान सभा के गठन और संचालन में डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की भूमिका पर केंद्रित है। 9 दिसंबर 1946 को गठित संविधान सभा में उन्हें सर्वसम्मति से अस्थायी अध्यक्ष (Protem Speaker) चुना गया। यह चयन न केवल परंपरागत रूप से वरिष्ठ सदस्य को अध्यक्ष बनाने की परिपाटी के अनुरूप था, बल्कि उनकी विद्वता, अनुभव और सार्वजनिक जीवन में योगदान की मान्यता भी थी।

डॉ. सिन्हा ने अपने संक्षिप्त कार्यकाल में संविधान सभा के प्रारंभिक संचालन की मजबूत नींव रखी। उन्होंने विभिन्न देशों से प्राप्त शुभकामना संदेश पढ़े, सदस्यों के परिचय पत्रों की पुष्टि करवाई और स्थायी अध्यक्ष के निर्वाचन की प्रक्रिया संपन्न करवाई। उनके उद्घाटन भाषण में लोकतांत्रिक आदर्शों, एकता, धैर्य, न्याय और दूरदृष्टि पर विशेष बल दिया गया। उन्होंने अमेरिका, फ्रांस, स्विट्जरलैंड और अन्य देशों की संवैधानिक व्यवस्थाओं के अध्ययन की आवश्यकता पर जोर देते हुए भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप संविधान निर्माण का आह्वान किया।

स्थायी अध्यक्ष के रूप में डॉ. राजेंद्र प्रसाद के निर्वाचन के बाद भी डॉ. सिन्हा का प्रभाव संविधान सभा में बना रहा। यद्यपि स्वास्थ्य कारणों से उनकी सक्रिय भूमिका सीमित रही, लेकिन उनके नेतृत्व और विचारों ने संविधान सभा की कार्यशैली में गरिमा, संतुलन और गंभीरता बनाए रखी। डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का योगदान केवल प्रक्रियात्मक नहीं था, बल्कि उन्होंने संविधान सभा में संस्थागत परिपक्वता, लोकतांत्रिक मूल्यों और नैतिक दृष्टिकोण को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका यह कार्य स्वतंत्र भारत की संवैधानिक यात्रा में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर है।

बीज शब्द: संविधान सभा, संवैधानिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक आदर्श, संस्थागत परिपक्वता, संवैधानिक यात्रा, प्रोटेम स्पीकर।

परिचय

भारत का संविधान यानि भारत का सर्वोच्च विधान विश्व का सबसे लम्बा और विस्तृत संविधान है। इस संविधान का निर्माण वर्ष 1946 में गठित कैबिनेट मिशन की अनुशंसा पर गठित संविधान सभा के द्वारा किया गया था।[1] भारत का संविधान 26 नवम्बर,1949 को अंगीकार किया गया और संविधान सभा के सदस्यों ने 24 जनवरी, 1950 को इस पर अपने हस्ताक्षर किए और इस प्रकार, भारत का संविधान 26 जनवरी,1950 को लागू हुआ,जब स्वतंत्र भारत ने स्वयं को एक 'लोकतंत्रात्मक गणराज्य' घोषित किया।[2] हम उन महान व्यक्तियों की दृष्टा, दूरदर्शिता और बुद्धिमता के प्रति आभारी हैं जिन्होंने इस महत्वपूर्ण दस्तावेज की रचना की।

संविधान सभा के प्रथम अस्थायी अध्यक्ष या प्रोटेम स्पीकर के रूप में डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा का सर्वसम्मति से निर्वाचन किया गया।[3] डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा दक्षिण बिहार से सम्बंधित थे। इनका

@2025 Bihar Shodh Samaagam

जन्म 10 नबम्बर 1871 ई० को शाहाबाद जिला के मुरार गाँव में हुआ था जो सम्प्रति बक्सर जिला के अंतर्गत है। उनके पिता का नाम बक्शी रामयाद सिन्हा था जो महाराजा डुमराँव के मुख्य वकील थे। इनके पितामह बक्शी शिव प्रसाद डुमराव राजा के दिवान थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा आरा में हुई। माध्यमिक शिक्षा आरा के ही टी०के० घोष अकादमी, महाविद्यालय की शिक्षा पटना कॉलेज तथा सिटी कॉलेज कलकत्ता में हुई। डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा का जीवन मदन मोहन मालवीय से प्रभावित था। अखिल भारतीय कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ, जहाँ वे कांग्रेस के स्वंयसेवक के रूप पहले पहल भाग लिए। और वहाँ ही उनकी मुलाकात मदन मोहन मालवीय से हुई। सच्चिदानन्द सिन्हा बिहार में राजनीतिक जागृति के अग्रदूत तथा बिहार प्रांत के निर्माण आंदोलन के प्रणेताओं मे से एक थे। डॉ सच्चिदानंद सिन्हा बिहार उड़ीसा प्रांत के विधायिका के भी सदस्य रहे और केंद्रीय विधायिका के भी सदस्य रहे थे।

सच्चिदानन्द सिन्हा शहाबाद से 1930-37 तक "बिहार और उड़ीसा विधान परिषद" के सदस्य रहे।[4] 1936 से दिसम्बर 1944 तक वे पटना विश्वविद्यालय के प्रथम गैरसरकारी वाइस चांसलर रहे।[5] वे दो बार पटना विश्वविद्यालय निर्वाचन क्षेत्र से 1937 तथा 1946 में बिहार विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए और दोनों बार यानि 1937 और 1946 में बिहार विधान सभा के प्रोटेम स्पीकर होने का उन्हें सम्मान मिला। 1946 में ही वे बिहार विधान सभा की ओर से भारतीय संविधान सभा के लिए निर्वाचित हुए और प्रोटेम स्पीकर के रूप में संसद के पुस्तकालय भवन में 9 दिसम्बर, 1946 को "भारतीय संविधान सभा" का उद्घाटन करने का उन्हें गौरव मिला।[6]

यद्पि अस्थायी अध्यक्ष के रूप में सच्चिदानन्द सिन्हा ने सिर्फ तीन दिन ही सभा का संचालन किया लेकिन इन्होने महत्वपूर्ण कार्य किये-

1. डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा ने अध्यक्ष के रूप में प्रथम कार्य के रूप में मुख्यतः तीन देशों-अमेरिका, चीन और ऑस्ट्रेलिया-से आये शुभ-कामनाओं के संदेश को सभा को पढ़ कर सुनाया।
2. सभापति के रूप में डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य सभा के सदस्यों के परिचय-पत्र की पेशी और रजिस्टर में हस्ताक्षर करवाना था।
3. सभा के स्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन करवाना।

डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा ने अध्यक्ष के रूप में प्रथम कार्य के रूप में विभिन्न देशों, मुख्यतः तीन देशों-अमेरिका, चीन और ऑस्ट्रेलिया-से आये शुभ-कामनाओं के संदेश से सभा को अवगत करवाया। उन्होंने तीन देशों के शुभकामनायें संदेशों को पढ़ा।[7] इसके उपरांत डॉ सच्चिदानंद सिन्हा ने सभा के सामने उद्घाटन भाषण दिया, जो इस प्रकार था- "प्रथम भारतीय विधान परिषद् के माननीय सदस्यो, मुझे अपनी विधान परिषद् का प्रथम सभापति स्वीकार करने में आप सब सहमत हैं, इसके लिए मैं आपका बड़ा ही आभारी हूं। इससे मैं इस सभा के प्रारम्भिक कार्यक्रम को जैसे स्थायी सभापति का चुनाव, कार्य संचालन के लिये नियम-निर्माण, विभिन्न समितियों की स्थापना, परिषद् की कार्यवाही को जो स्वतंत्र भारत के लिए एक उपयुक्त और स्थायी विधान बनाकर आपके प्रयास को सफल करेगी, गुप्त रखने या प्रकाशन देने आदि का कार्य सम्पादित कर सकूंगा। आपकी महती कृपा के प्रति प्रशंसात्मक भावना व्यक्त करते हुए मैं अपनी एक और अनुभूति को छिपा नहीं सकता, वह यह है कि मैं ऐसा अनुभव करता हूं-अवश्य ही यह लघुता की महत्ता से

तुलना होगी कि वर्तमान अवसर पर मैं अपने को उसी स्थिति में पाता हूं, जिस में लार्ड पामर्स्टन (Lord Palmerston) ने अपने को उस समय पाया था, जब साम्राज्ञी विक्टोरिया ने उन्हें शूरता की उच्चतम उपाधि "नाइटहुड ऑफ दी गार्टर" (Knighthood of the Garter) प्रदान की थी। साम्राज्ञी की इस कृपा को स्वीकार करने के सम्बन्ध में लार्ड पामर्स्टन (Lord Palmerston) ने अपने एक मित्र को यों लिखा थाः "मैंने साम्राज्ञी की इस उपाधि को इसलिए कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है कि परमात्मा को धन्यवाद है- उपाधि प्राप्ति को योग्यता सन्देह से परे हैं।" मैं खुद को कम या बेशी उसी स्थिति में पाता हूं। यह बात मैं इसलिए कहता हूं कि आपने मुझे अपना सभापति स्वीकार किया है केवल इस आधार पर कि मैं इस सभा का सबसे वयोवृद्ध सदस्य हूं। अस्तु, चाहे जिन कारणों से भी आपने मुझे सभापति चुना हो, मैं इसके लिए आपका हृदय से आभारी हूं। सार्वजनिक सेवाओं के लिए मुझे इस दीर्घ जीवन में अनेक सम्मान मिले हैं, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं आपकी इस कृपा को सर्वोच्च सम्मान समझता हूं और इसे अपने अवशिष्ट जीवन में सदा सुरक्षित रखूंगा। इस ऐतिहासिक और स्मरणीय अवसर पर अगर मैं विधान परिषद् क्या है, इस पहलू पर आपके सामने कुछ बात कहूं तो मुझे विश्वास है कि आप कुछ ख्याल न करेंगे। देश के लिए विधान बनाने की यह राजनैतिक प्रणाली हमारे ब्रिटेन निवासी प्रजा बन्धुओं को नहीं मालूम थी। यह इसलिए कि ब्रिटिश विधान में विधान मूलक नियम (Constituent law) बोल कर कोई चीज नहीं है। सर्वशक्ति सम्पन्न सभा होने के कारण ब्रिटिश पार्लियामेंट को सभी कानूनों को, यहां तक कि विधान मूलक नियमों को भी बनाने और रद्द करने का खास अधिकार या सुविधा प्राप्त है। अतः विधान परिषद् की वास्तविक स्थिति क्या है, इसे जानने के लिए हमें ब्रिटेन को छोड़ दूसरे देशों की ओर देखना होगा। यूरोप में स्विट्जरलैंड के प्राचीनतम प्रजातंत्र के पास भी वास्तविक अर्थ में विधान मूलक नियम (Constituent Law) नहीं हैं, क्योंकि यह कई शताब्दियां पहले ऐतिहासिक कारणों और घटनाओं के वशवर्ती हो, अपने आज के आकार से कहीं अधिक छोटे आकार में उत्पन्न हुआ था। जो भी हो, स्विट्जरलैंड की वर्तमान वैधानिक प्रणाली ने कई उल्लेखनीय और उपदेशात्मक बातों की पूर्ति की है, जिनकी सिफारिश बड़े-बड़े योग्य अधिकारियों या विद्वानों ने भारतीय विधान निर्माताओं से की है। मुझे विश्वास है. यह सभा स्विस-विधान का ध्यान से मनन करेगी और स्वतंत्र भारत के उपयुक्त-विधान के निर्माण में लाभ उठाने के लिए इसका उपयोग करने की कोशिश करेगी। यूरोप का एकमात्र दूसरा राज्य जिसके विधान की ओर सुविधा प्राप्ति के लिए हम दृष्टि डाल सकते हैं, वह है फ्रांस का विधान। इसकी पहली विधान परिषद् "फ्रांसीसी राष्ट्रीय परिषद्" (The French National Assembly) के नाम से सन् 1789 में जब फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति फ्रेन्च राजतंत्र को उखाड़ फेंकने में सफल हुई, बुलाई गई थी। पर तब से समय-समय पर फ्रांसीसी गणतंत्र प्रणाली परिवर्तित होती आई है और फिलहाल भी यह कम या वेशी निर्माण प्रक्रिया में है। अतः यद्यपि विधान मूलक नियमों से सम्बन्ध रखने वाली फ्रांसीसी प्रणाली के अध्ययन से आप उतना लाभ नहीं उठा सकते, जितना कि स्विस प्रणाली के अध्ययन से, फिर भी कोई कारण नहीं कि आप विधान निर्माण के अपने महान कार्य में उससे जो भी लाभ मिलते हों. उन्हें प्राप्त करने का प्रयास न करें।

फ्रांसीसी विधान निर्माता, जो सन् 1789 में अपने देश की प्रथम विधान परिषद् में सम्मिलित हुए थे, वे इससे दो वर्ष पूर्व 1787 में फिलाडेल्फिया में होने वाले अमेरिकन विधान निर्माताओं के ऐतिहासिक विधान-सम्मेलन (Constitutional Convention) की कार्रवाई से वस्तुतः स्वयं बहुत प्रभावित थे। स-पार्लियामेंट

ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी राजनिष्ठा (allegiance) का परित्याग कर अमेरिका के विधान-निर्माता समवेत हुए थे और उन्होंने ऐसा विधान बनाया, जो आज दुनिया में सबसे ठोस और व्यावहारिक विधान समझा जाता है और वह है भी ऐसा। यही महान विधान बाद में बने सभी विधानों के लिए, न केवल फ्रांस के, बल्कि कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका प्रभृति ब्रिटिश कामनवेल्थ के स्वायत्त शासन पूर्ण सभी उपनिवेशों के विधानों के लिए आदर्श स्वरूप माना गया था। मुझे सन्देह नहीं है कि आप भी और देशों की विधान पद्धति की अपेक्षा अमेरिकन विधान-पद्धति की ओर अधिक ध्यान देंगे।

मैंने ऊपर चर्चा की है कि ब्रिटिश कामनवेल्थ के उपनिवेशों के स्वायत्त शासन प्राप्त विधान अगर अमेरिकन विधान की हूबहू प्रति नहीं है, तो कम से कम बहुत हद तक उसके ही आधार पर बने हैं। अमेरिका की विधान-प्रणाली से लाभउठाने वाला पहला देश कनाडा था। स्व-शासन-विधान बनाने के लिए इस देश का ऐतिहासिक सम्मेलन (Convention) सन् 1864 में केबेक में हुआ था। इसी सम्मेलन ने कनाडा का विधान बनाया, जो बाद में ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा सन् 1867 में स्वीकृत "ब्रिटिश नार्थ अमेरिकन एक्ट" (The British North American Act) में मिला दिया गया, जो Act आज भी Statute Book में दर्ज है। आपको यह जान कर शायद दिलचस्पी होगी कि केबेक सम्मेलन (Quebek Convention) में केवल 33 प्रतिनिधि ही थे, जो कनाडा के सारे प्रांतों से आये थे और केवल तेंतीस प्रतिनिधियों के इस सम्मेलन ने छिहत्तर प्रस्ताव पास किये, जो बाद में ज्यों के त्यों "ब्रिटिश नार्थ अमेरिकन एक्ट" (British North American Act) में समवेत कर दिये गये और इन्हीं के आधार पर सन् 1867 में ब्रिटिश कामनवेल्थ ऑफ कनाडा (British Commonwealth of Canada) के स्वायत्त शासन प्राप्त उपनिवेश की उत्पत्ति हुई। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इस कनाडियन सम्मेलन की सारी योजनाएं केवल एक संशोधन के साथ ज्यों की त्यों स्वीकार कर लीं। माननीय सदस्यो, मेरी आशा और प्रार्थना है कि आपका प्रयास भी इसी तरह साफल्य मंडित हो।

अमेरिका की विधान प्रणाली आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के विधान निर्माण की योजनाओं में भी कमी-वेशी व्यवहृत की गयी हैं। इससे स्पष्ट है कि सन् 1787 में फिलाडेल्फिया में समवेत अमेरिकन सम्मेलन का परिणाम विभिन्न देशों के स्वतंत्र संघ-शासन-विधान के बनाने के लिए आदर्श स्वरूप माना गया था। इन्हीं कारणों से मैंने यह उचित समझा कि आपका ध्यान अमेरिका की विधान प्रणाली और विधान मूलक नियमों की ओर आकृष्ट करूं कि आप ध्यान से उसका अध्ययन करें, इसलिए नहीं कि आप उसे पूर्णतः ग्रहण करें, बल्कि इसलिए कि अपने सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के अनुसार उनकी व्यवस्थाओं को आवश्यक संशोधनों के साथ, देश की आवश्यकतानुसार विवेक के साथ अपनायें। श्री मुनरो (Munro) का जो इस विषय के सर्वमान्य अधिकार हैं. कथन है कि अमेरिका का विधान बहुत-सी शर्तों और समझौतों के आधार पर निर्मित है। श्री मुनरो के मन्तव्य के अनुसार ही मैंने आपको यह राय दी है। अपने आधी शताब्दी के सार्वजनिक जीवन के अनुभवों के आधार पर मैं यह और भी कहना चाहता हूं कि भारत जैसे देश के लिए विधान बनाने में तर्कसंगत शर्तों और विवेकपूर्ण समझौतों की जितनी आवश्यकता है, उतनी और कहीं नहीं।

अमेरिकन विधान के आधारभूत सिद्धांतों को तर्कसंगत शर्तों एवं विवेकपूर्ण समझौतों के साथ खूब सोच विचार कर आप स्वीकार करें, ऐसी सिफारिश करते हुए बहुत अच्छा होगा कि मैं उस विषय के

सर्वोच्च ब्रिटिश विद्वान श्री विस्काउन्ट ब्राइस (Viscount Bryce) के उल्लेखनीय कथन को उद्धृत करूं जो उन्होंने अपनी अमर पुस्तक दी अमेरिकन कामनवेल्थ (The American Commonwealth) में अमेरिकन विधान के आधारभूत सिद्धान्तों का सारांश रखते हुए यों लिखा है: "अमेरिका का केन्द्रीय संघ केवल एक लीग (जमाअत) नहीं है, क्योंकि उसका अस्तित्व वहां के भिन्न-भिन्न स्टेटों या प्रान्तों पर निर्भर नहीं करता। यह तो खुद सर्वशक्ति सम्पन्न कामनवेल्थ और कतिपय कामनवेल्थों का संघ है, क्योंकि उसे तो सीधे प्रत्येक नागरिक पर शासनाधिकार प्राप्त है और वह इस अधिकार को अपने न्यायालयों और अधिकारियों या हाकिमों (Executives) के द्वारा प्रत्येक नागरिक पर लागू करता है। इंग्लैंड या फ्रांस की तरह यहां के भिन्न-भिन्न स्टेट या रियासतें महज संघ के अंतर्गत एक छोटा-सा इलाका नहीं है, बल्कि उनको अपने नागरिकों पर शासनाधिकार प्राप्त में, जो उन्हें केन्द्रीय संघ से नहीं मिला है।"

यह सम्भव है कि अपनी आवश्यकतानुसार बुद्धिमत्तापूर्वक अपनाई हुई किसी ऐसी ही योजना के स्वतंत्र भारत के विधान का सन्तोषजनक हल मिल जाये और वह विधान इस देश के प्रायः सभी प्रमुख दलों की वाजिब आशाओं और आकांक्षाओं को सन्तोष दे सके। अमेरिकन विधान के महान गुणों पर सर्वोच्च ब्रिटिश विद्वान का उद्धरण मैंने आपको दिया है। अब मैं जॉसेफ स्टोरी (Joseph Story) नामक सर्वोच्च अमेरिकन jurist का काफी लम्बा उद्धरण सुनाता हूं और आशा है, मेरी तरह धीरज रखकर आप सुनेंगे। "Commentaries on the Constitution of the United States" नामक प्रसिद्ध पुस्तक के अन्त में आपने कुछ उल्लेखनीय और उत्साहप्रद बातें कही हैं, जिसे आपके मनन योग्य समझकर मैं आपके सामने रखता हूं। वह यों है: "अमेरिका के नवयुवकों को यह कभी न भूलना चाहिए कि अपने विधान में उन्हें एक ऐसी ऊंची विरासत मिली है, जिसे उनके पूर्वजों ने अथक परिश्रम, कष्ट और बलिदान करके, अपना खून देकर उपार्जित किया था और यदि ईमानदारी से इसकी रक्षा की जाये और बुद्धिमत्ता से इसे और समुन्नत बनाया जाये तो वह इस योग्य है कि वह उनके सुदूरभावी वंशजों को जीवन की समस्त कामनायें स्वातंत्र्य, सम्पन्नता और धर्म का सुखद उपभोग-प्रदान कर सकता है। इस विधान की इमारत को बड़े-बड़े कुशल कारीगरों ने बनाया है; इसकी नींव ठोस है; इस इमारत का हर हिस्सा बड़ा फायदेमन्द और खूबसूरत है; इसकी व्यवस्था बुद्धि और तारतम्य से पूर्ण है; इसकी रक्षात्मक व्यवस्था बाहर से अजेय है; यह इस तरह खड़ी की गयी है कि अमर रहे-यदि मनुष्यकृति अमरत्व प्राप्ति की अधिकारी हो सकती है। पर अपने रक्षकों की यानी प्रजा की मूर्खता, उपेक्षा और आचारहीनता से यह इमारत क्षण भर में ढहकर खंडहर बन जा सकती है। मैं चाहूंगा, आप इसे याद रखें कि प्रजातंत्रों की स्थापना होती है नागरिकों के बुद्धिबल से, उनकी जनसेवा भावना और उनके गुणों से, और जब ईमानदार बने रहने का साहस रखने के कारण बुद्धिमान और विवेकपरायण पुरुष जनसभाओं से बहिष्कृत कर दिये जाते हैं और सिद्धान्त-विहीन व्यक्ति जनता को ठगने के लिये उसकी मिथ्या प्रशंसा या खुशामद कर सम्मान प्राप्त करने लगते हैं, तो प्रजातंत्र विनष्ट हो जाते हैं।"

अमेरिका के आदर्श विधान के बारे में एक और विद्वान का कथन मैं उद्धत करता हूं। श्री जेम्स (James) जो एक समय अमेरिका के सालिसिटर जनरल थे। "The Constitution of the United States-Yesterday, Today and Tomorrow" नामक अपनी पाण्डित्यपूर्ण पुस्तक में लिखते हैं: "शासन प्रणालियों के महौषधि स्वरूप कितने ही विधान बने और बिगड़े, पर अमेरिकन विधान की स्थिरता के सम्बन्ध में वह

ऊंचा उद्गार लागू किया जा सकता है, जो डॉक्टर जॉनसन ने महाकवि शेक्सपियर की अमरकीर्ति की प्रशंसा में कहा है। जहां बड़े-बड़े ठोस विधान समय के प्रबल प्रवाह में बह गये, अमेरिका का शक्तिशाली विधान इससे बिल्कुल अछूता बच गया। प्रथम दस संशोधनों को छोड़ कर जो प्रायः मूल प्रस्ताव के ही भाग थे, केवल नौ संशोधन ही 139 वर्षों के दीर्घकाल में अपनाये गये। भला कौन-सी दूसरी शासन प्रणाली है जो जमाने की जांच में इससे ज्यादा पक्की साबित हुई हो।"

माननीय सदस्यो, मेरी यह प्रार्थना है कि जो विधान आप बनाने जा रहे हैं वह भी अमर हो, 'यदि मानव कृति ऐसा महत्त्व पाने का वस्तुतः अधिकारी हो सकती है, और ऐसा प्रबल शक्ति सम्पन्न हो कि वर्तमान और भविष्य की तमाम विनाशकारी शक्तियों को पद्दलित कर दे। अमेरिका और यूरोप के विधान निर्माण के कुछ पहलुओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर लेने के बाद अब मैं अपने विधान सम्बन्धी प्रश्न के कुछ पहलुओं की ओर लाभ के लिये आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। महात्मा गांधी के सन् 1922 में दिये एक वक्तव्य में विधान परिषद् का जिक्र मुझे मिला है. यद्यपि इस नाम से नहीं। महात्माजी ने लिखा थाः "स्वराज्य ब्रिटिश पार्लियामेंट की ओर से एक उपहार की तरह नहीं होगा। यह तो भारत की समस्त मांगों की स्वीकृति सूचक एक घोषणा होगी, जिसे ब्रिटिश पार्लियामेंट एक कानून पास कर, प्रदान करेगी। परन्तु यह घोषणा तो भारतीय जनता की चिर घोषित मांगों की केवल सौजन्यपूर्ण स्वीकृति ही होगी। यह स्वीकृति बतौर सन्धि या समझौते के होगी जिसमें ब्रिटेन एक पार्टी रहेगा। जब यह समझौता होगा तो ब्रिटिश पार्लियामेंट भारतीय प्रजा की इच्छानुसार चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त की हुई भारतीय जनता की मांगों को स्वीकार करेगी।" समय-समय पर भिन्न-भिन्न राजनैतिक संगठनों और नेताओं ने भारतीय जनता की इच्छानुसार चुने प्रतिनिधियों से बनी विधान परिषद् सम्बन्धी महात्माजी की मांग का जबरदस्त समर्थन किया था। पर मई सन् 1934 में रांची (बिहार) में संगठित 'स्वराज पार्टी' ने एक योजना बनाई जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव भी शामिल था। प्रस्ताव यों थाः "यह कान्फ्रेन्स भारतवर्ष के लिये आत्म-निर्णय के अधिकार का दावा करती है और इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने का एकमात्र रास्ता यह है कि भारतीय जनता के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक विधान परिषद् बुलाई जाये, जो एक स्वीकृति-योग्य विधान बनाये।" जो नीति इस प्रस्ताव में सन्निहित है, उसे कुछ दिनों बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने, जिसकी बैठक बिहार की राजधानी पटना में मई सन् 1934 में हुई थी, स्वीकार किया। इस तरह भारतीय विधान बनाने के लिए विधान परिषद् की योजना को अखिल भारतीय कांग्रेस ने व्यक्तरूप से अपनाया। दिसम्बर सन् 1936 में फैजपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में उक्त प्रस्ताव का पुनः समर्थन किया गया। समर्थन करने वाले प्रस्ताव में यों घोषणा की गई थीः "कांग्रेस भारत में वास्तविक प्रजातंत्रीय राज्य चाहती है. जहां सम्पूर्ण राजनैतिक सत्ता जनता को हस्तान्तरित कर दी गयी हो और हुकूमत (Government) सम्पूर्णतः प्रजा के हाथ में हो। ऐसे राज्य का निर्माण तो ऐसी विधान परिषद् ही कर सकती है, जो देश के लिए विधान बनाने की समस्त सत्ता रखती हो।" नवम्बर सन् 1936 में कांग्रेस की कार्य समिति ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें यह कहा गया था: "भारत की स्वतंत्रता तथा उसकी जनता को विधान परिषद् के द्वारा अपना विधान निर्माण करने के अधिकार की स्वीकृति परमावश्यक है।" मैं यह भी कह दूं कि उपरोक्त प्रस्तावों में जिनसे मैंने उद्धरण दिया है, (जिसे नवम्बर सन् 1939 में कार्य समिति ने

पास किया और सन् 1936 में फैजपुर के कांग्रेस अधिवेशन ने पास किया) यह कहा गया था कि विधान परिषद् बालिग मताधिकार के सिद्धान्त के आधार पर चुनी जानी चाहिए। जब से सन् 1934 में कांग्रेस ने इस प्रश्न पर नेतृत्व प्रदान किया, देश के प्रायः सभी राजनीति चेतना सम्पन्न वर्गों में विधान परिषद् का विचार बतौर विश्वास (Article of Faith) की तरह जोर पकड़ गया है।

मार्च सन् 1940 के पहले जबसे मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव रखा, यह राजनैतिक संगठन (मुस्लिम लीग) इस देश के विधान निर्माण के लिये विधान परिषद् ही उचित और उपयुक्त उपाय है. इस विचार के पक्ष में मैं कभी न था। पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार करने के बाद मुस्लिम लीग का रुख विधान परिषद् की स्थापना के पक्ष में बदल गया है। पर वे दो विधान परिषदें चाहते हैं, एक तो उस क्षेत्र के लिये जिसे लीग पृथक् मुस्लिम स्टेट बनाने की मांग करती है और दूसरा शेष भारत के लिए। इस तरह कहा जा सकता है कि देश के विधान निर्माण के लिये विधान परिषद् की कल्पना को इन दोनों प्रमुख राजनैतिक दलों ने सन् 1940 में स्वीकार किया और प्रश्रय दिया। पर दोनों में अन्तर यह था कि कांग्रेस समस्त भारत के लिये एक विधान परिषद् चाहती थी जब कि मुस्लिम लीग देश में दो राज्यों की मांग के अनुसार दो विधान परिषद् चाहती थी। अस्तु, चाहे एक परिषद् हो या दो, देश के विधान-निर्माण के लिए विधान परिषद् ही उपयुक्त उपाय है, यह विचार उस समय तक स्पष्ट रूप में उत्पन्न और जागृत हो चुका था। इसी जबर्दस्त मानसिक जागरण के सम्बन्ध में पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "इसका मतलब है कि एक राष्ट्र अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा अपने लिए, स्वशासन निर्माण के लिए अग्रसर हो चुका है।"

मुझे इतना और भी बता देना है कि सप्रू-समिति (Sapru Committee) के सदस्यों ने भी भारत का शासन-विधान बनाने के लिये विधान परिषद् ही सर्वोत्तम उपाय है, इस कल्पना को पसन्द किया था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में, जो गत वर्ष सन् 1945 में प्रकाशित हुई है. विधान परिषद् के निर्माण के लिए एक विशेष योजना भी बनाई है। पर आज हम सब इस सभा में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन द्वारा निर्मित योजना के अनुसार समवेत हुए हैं कांग्रेस, लीग एवं अन्य राजनैतिक संगठनों द्वारा इस मसले पर दिये गये सुझावों से मतभेद रखते हुये भी ब्रिटिश कैबिनेट मिशन ने एक योजना बनाई है। इस योजना को यद्यपि सबने तो नहीं स्वीकार किया है, पर न सिर्फ देश के प्रमुख राजनैतिक दलों ने और राजनीति-चेतना-सम्पन्न वर्गों ने ही, बल्कि उन लोगों ने भी जिनका किसी खास राजनैतिक दल से सम्बन्ध नहीं है, उसे वर्तमान राजनैतिक गतिरोध को दूर करने के लिये परीक्षणीय मान कर स्वीकार किया है। यह राजनैतिक गतिरोध अर्से से चला आ रहा है और इसने हमारी समस्त कामनाओं और लक्ष्यों पर पानी फेर रखा है। मेरी इच्छा नहीं है कि मैं ब्रिटिश कैबिनेट मिशन की योजना के गुणों पर और कुछ कहूं, क्योंकि इससे मैं मतभेद के प्रश्नों पर विषयान्तरित हो जाऊंगा और मेरी इच्छा नहीं कि मैं इस अवसर पर विषयान्तर में पहूं। मैं जानता हूं कि ब्रिटिश कैबिनेट मिशन की योजना के कुछ भाग पर हमारे कुछ राजनैतिक दलों में गहरा मतभेद है और इसलिये मैं नहीं चाहता कि ऐसे स्थल पर चला जाऊं, जहां जाने में बड़े-बड़े राजनैतिक देव भी डरते हों।

माननीय सदस्यो, मुझे भय है कि शायद मैंने आपका काफी समय ले लिया, अतः अब अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूं। भारतीय इतिहास का यह महान और स्मरणीय अवसर अभूतपूर्व है। देश की

जनता की बहुसंख्यक श्रेणियों ने जिस अदम्य उत्साह से इस परिषद् का स्वागत किया है, वह बेजोड़ है। परिषद् सम्बन्धी प्रश्नों ने देश के विभिन्न सम्प्रदायों में जो दिलचस्पी उत्पन्न की है वह अद्‌वितीय है और सबसे बड़ी बात यह है कि हमारी सबसे बड़ी समस्या हमारी राजनैतिक स्वतंत्रता, हमारी आर्थिक स्वतंत्रता पर समझौता प्राप्त करने की उज्ज्वल आशा आज भी वर्तमान है; और आपको इतनी देर तक रोक रखने में यही एकमात्र औचित्य है। मेरी कामना है कि आपका प्रयत्न सफलीभूत हो। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको अपना मंगलमय आशीर्वाद दे, जिससे आपकी परिषद् की कार्रवाई केवल विवेक, जन-सेवा-भावना और विशुद्‌ध देशभक्ति से ही परिपूर्ण न हो, बल्कि बुद्‌धिमत्ता, सहिष्णुता, न्याय और सबके प्रति सम्मान, सद्‌भावना से भी ओतप्रोत हो। भगवान परिषद् के कार्य संचालन में आपको वह दूरदृष्टि दे, जिससे भारत को पुनः अपना अतीत गौरव प्राप्त हो और उसे विश्व के महान राष्ट्रों के बीच प्रतिष्ठा और समानता का स्थान मिले। महान भारतीय कवि इकबाल की चन्द चिर सुन्दर पंक्तियां आपको इस पुनीत अवसर पर सुनाता हूं। उस कवि को देश का कितना अभिमान था। इस प्राचीन ऐतिहासिक और महान देश के सौभाग्य की अमरता के प्रति उसका कितना ध्रुव विश्वास था! स्मरण रहे कि आपको इस कवि के अमर विश्वास और अभिमान को सही साबित करना है। कविता यों है:

यूनान, मिश्र, रोमां, सब मिट गये जहां से,
बाकी अभी तलक है नामो-निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा ।।

इसका अर्थ यों है: "ग्रीस, मिस्र और रोम प्रभृति सभी देश दुनिया के पर्दे से उठ गये, पर हमारे देश का नाम और गौरव आज भी समय के विनाशकारी प्रवाह से संघर्ष करता हुआ जीवित है। शताब्दियों से दैव की ही कोप-दृष्टि हम पर रही है, पर अवश्य ही हम में कुछ ऐसे अमर-तत्व हैं, जिन्होंने हमारे विनष्ट करने वाले सारे प्रयासों को पछाड़ दिया है।" मैं आपसे यह विशेष अनुरोध करता हूं कि आप अपने प्रयत्न में विशाल और उदार दृष्टि से काम लें। पवित्र ग्रंथ बाइबिल हमें सिखाता है- "जहां दूर-दृष्टि नहीं है. वहां मनुष्य का विनाश है।"

चूँकि डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा का स्वास्थ्य बेहतर नहीं था, अतः इसको ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने कार्यभार को कम करने के लिए श्री फ्रैंक एन्थॉनी को उपसभापति के रूप में मनोनीत किया। इस सन्दर्भ में उन्होंने सभा के सामने निम्नलिखित शब्दों में अपनी बात रखी- "मुझे केवल व्यक्तिगत कारणों से आपके सामने एक प्रस्ताव रखना है। आशा है, कृपया आप इसका समर्थन करेंगे। अपने चिकित्सक की सलाह से मैं गत कई वर्षों से दोपहर बाद कुछ भी काम करने में असमर्थ हूं। मैं नहीं चाहता कि जलपान के अवकाश के बाद मैं फिर कार्य-संचालन करूं। अतः जब तक मैं अस्थायी सभापति हूं और सभा में परिचय-पत्र (Credential) पेश करने और रजिस्टर में हस्ताक्षर करने का काम चलता है, तब तक के लिये मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह मुझे एक उपसभापति की सहायता दे। मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस पद के लिये श्री फ्रैंक एन्थॉनी (Mr. Frank Anthony) को आप नामजद करें। (कुछ रुककर) मैं इस प्रस्ताव को स्वीकृत घोषित करता हूं।"[8]

• सभापति के रूप में डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था- सभा के सदस्यों के परिचय-पत्र की पेशी और रजिस्टर में हस्ताक्षर करवाना।[9] सर्वप्रथम उन्होंने स्वयं का परिचय पत्र प्रस्तुत किया। इसके बाद उन्होंने घोषणा की कि मंत्री (Secretary) अब माननीय सदस्यों का नाम पुकारेंगे और सदस्य उनके पास जाकर आप अपना परिचय-पत्र देंगे और रजिस्टर में हस्ताक्षर कर अपने स्थान पर वापिस चले जायेंगे। इस प्रकार बारी-बारी से तत्कालीन भारत के विभिन्न प्रांतों से सभा के लिए निर्वाचित सदस्यों ने अपने परिचय पत्र प्रस्तुत करए हुए रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया।[10] इस सन्दर्भ में प्रथम दिन कुल 207 सदस्यों ने अपना परिचय पत्र प्रस्तुत करते हुए सभा के रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

भारतीय संविधान सभा के दूसरे दिन यानि 10 दिसम्बर सन् 1946 ई.को अस्थायी सभापति डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा के सभापतित्व में स्थायी सभापति के चुनाव के लिए विधि निर्धारित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया और फिर सभा के लिए स्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन हुआ। "सभापति (डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा): अब मैं स्थायी सभापति के चुनाव के लिए विधि निर्धारित करने का प्रस्ताव लेता हूं। मैं समझता हूं, आचार्य कृपलानी उस प्रस्ताव को पेश करेंगे। मैं उन्हें आमंत्रित करता हूं कि वे प्रस्ताव उपस्थित करें।"[11] इसके उपरांत आचार्य जे.बी. कृपलानी ने स्थायी सभापति के चुनाव की विधि का प्रस्ताव सभा के सामने उपस्थित किया।तदुपरांत उन्होंने सभा को बताया कि "नियमानुसार केवल एक व्यक्ति का सभापति के नामजदगी के लिए प्रस्ताव मिला है, और वो हैं श्री राजेंद्र प्रसाद।"

इस प्रकार, संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष के रूप में डॉ राजेंद्र प्रसाद के सर्वम्मति से हुए निर्वाचन के प्रस्तावक जे.बी. कृपलानी थे, जिसका समर्थन बल्लभभाई पटेल ने किया था। इसके फलस्वरूप अस्थायी सभापति के द्वारा स्थायी सभापति के रूप में माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को नियमानुसार निर्वाचित करने की घोषणा की गयी। "अब अस्थायी सभापति के नाते मैं आचार्य कृपलानी तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब से अनुरोध करूंगा कि वे परिषद् की ओर से उसके नियमानुकूल निर्वाचित सभापति के पास जायें और उन्हें प्लेटफार्म पर लाकर मेरे पास के आसन पर आसीन करें।" इसके उपरांत आचार्य कृपलानी तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को ससम्मान सभापति के आसान पर बिठाया। इसके बाद सभा के स्थायी सभापति ने अपना आसन ग्रहण किया और इसी के साथ अस्थायी अध्यक्ष के रूप में डॉ सच्चिदानंद सिन्हा की भूमिका समाप्त हुई। इस भूमिका की समाप्ति के बाद डॉ सिन्हा सभा के सदस्य के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकते थे लेकिन स्वास्थ्य सम्बंधित समस्या के कारण वे सभा में बहुत सक्रिय भूमिका नहीं निभा सके।

संविधान सभा के अंतरिम अध्यक्ष के रूप में डॉ सिन्हा का मूल्यांकन:

दिसंबर 1946 में भारत की संविधान सभा के अंतरिम अध्यक्ष के रूप में डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का चयन एक प्रतीकात्मक और महत्वपूर्ण निर्णय था, जिसने एक वरिष्ठ राजनेता, कानूनी विद्वान और संविधानविद के रूप में उनके प्रति सम्मान को रेखांकित किया। 81 वर्ष की आयु में, सिन्हा ने पहले ही सार्वजनिक जीवन में दशकों बिता दिए थे, अपने विधायी कार्य, कानूनी विचार और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता के माध्यम से भारत के कानूनी और राजनीतिक विमर्श को आकार दिया। सभा के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करने के लिए उनकी नियुक्ति सबसे बुजुर्ग और सबसे अनुभवी सदस्य को चुनने की परंपरा पर आधारित

थी, लेकिन उनके मामले में, इसका अधिक अर्थ था। उन्होंने आधुनिक भारत के संवैधानिक विकास को मूर्त रूप दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शुरुआती सुधारवादी मांगों से लेकर पूर्ण संप्रभुता की दहलीज तक और आगे आने वाले ऐतिहासिक कार्य को निरंतरता की भावना प्रदान की।

अंतरिम सभापति के रूप में डॉ. सिन्हा की भूमिका अस्थायी थी, जो स्थायी सभापति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के औपचारिक चुनाव तक ही चली। हालांकि, उनकी ज़िम्मेदारी बहुत महत्वपूर्ण थी। उन्हें संविधान सभा की उद्घाटन कार्यवाही की अध्यक्षता करनी थी और यह सुनिश्चित करना था कि संविधान का मसौदा तैयार करने का काम शुरू करने से पहले सभा का उचित गठन हो और प्रक्रियात्मक रूप से सुदृढ़ हो। 9 दिसंबर 1946 को, उन्होंने संविधान सभा की पहली बैठक खोली, एक ऐसा अवसर जो भारत के संवैधानिक इतिहास में सबसे निर्णायक क्षणों में से एक बन गया। सभा की बैठक संविधान हॉल (अब संसद का केंद्रीय कक्ष) में हुई, जहाँ उनकी अध्यक्षता में 207 सदस्यों ने भारतीय गणराज्य की रूपरेखा तैयार करने का कार्य शुरू किया। हालाँकि पार्टी के सत्र के बहिष्कार के कारण कई मुस्लिम लीग सदस्यों की अनुपस्थिति ने राजनीतिक तनाव को दर्शाया, लेकिन सिन्हा के शांत और संयमित आचरण ने सत्र को गरिमा और व्यवस्था के साथ आगे बढ़ने में मदद की।

डॉ. सिन्हा का संविधान सभा के अंतरिम अध्यक्ष के रूप में उद्घाटन भाषण यादगार रहा- स्वर में गंभीर और विषयवस्तु में दूरदर्शी। उन्होंने इस क्षण की गंभीरता को स्वीकार किया और सदस्यों को उनके कंधों पर रखी गई ऐतिहासिक जिम्मेदारी की याद दिलाई। उन्होंने सदस्यों से व्यक्तिगत, पार्टी और प्रांतीय हितों से ऊपर उठने और एकता, धैर्य और न्याय और स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता के साथ कार्य करने का आग्रह किया। उनके शब्दों ने न केवल एक प्रक्रियात्मक स्वागत के रूप में काम किया, बल्कि आने वाले महीनों और वर्षों के विचार-विमर्श के लिए एक नैतिक रूपरेखा भी प्रदान की। अपने संबोधन में, उन्होंने उन मुख्य उद्देश्यों को रेखांकित किया, जिनके बारे में उनका मानना था कि संविधान को पूरा करना चाहिए - स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र और बंधुत्व। उन्होंने जोर देकर कहा कि ये मूल्य अमूर्त आदर्श नहीं हैं, बल्कि ऐसे कार्यान्वयन योग्य सिद्धांत हैं, जिन्हें संवैधानिक दस्तावेज के प्रारूपण और एक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज के निर्माण का मार्गदर्शन करना चाहिए।[12]

उन शुरुआती महत्वपूर्ण दिनों के दौरान उनके नेतृत्व ने विधानसभा को इसकी प्रारंभिक संरचना दी और इस तरह के एक महत्वपूर्ण कार्य के लिए आवश्यक शिष्टाचार और गंभीरता को स्थापित करने में मदद की। उन्होंने सुनिश्चित किया कि विभिन्न समितियाँ जैसे कि क्रेडेंशियल कमेटी, नियम समिति और संचालन समिति प्रभावी रूप से स्थापित की गई और विधानसभा अपने मूल कार्य को व्यवस्थित तरीके से शुरू करने में सक्षम थी। हालांकि डॉ. सिन्हा ने एक स्थायी अध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग नहीं किया, लेकिन उन्होंने दृढ़ता और स्पष्टता के साथ काम किया, शुरुआती प्रक्रियात्मक मुर्दों को हल किया और भविष्य के सत्रों को निर्देशित करने वाले मूलभूत संसदीय सिद्धांतों को निर्धारित किया। विधान सभाओं में उनका अनुभव, संसदीय प्रक्रिया का उनका ज्ञान और उनकी गैर-पक्षपाती प्रतिष्ठा, सभी ने इस सीमित लेकिन महत्वपूर्ण भूमिका में उनकी प्रभावशीलता में योगदान दिया।

11 दिसंबर 1946 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद को सर्वसम्मति से संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुने जाने के बाद भी डॉ. सिन्हा का प्रभाव कम नहीं हुआ। हालांकि अब वे अध्यक्ष नहीं थे, लेकिन संवैधानिक मामलों पर मार्गदर्शन के लिए सभा के कई सदस्य उनसे सलाह लेते रहे। उनकी विरासत को सभा के शुरुआती कामकाज में उनके द्वारा डाली गई भावना के रूप में आगे बढ़ाया गया जिसमें पारस्परिक सम्मान, व्यवस्थित बहस और सैद्धांतिक चर्चा शामिल थी। कई सदस्यों ने स्वीकार किया कि सिन्हा के बुद्धिमान और संतुलित नेतृत्व ने सभा को सही दिशा में अपनी यात्रा शुरू करने में मदद की। भारतीय राजनीति के गांधी-पूर्व और गांधीवादी चरणों में शामिल होने वाले बहुत कम सदस्यों में से एक के रूप में, उन्होंने राजनीतिक विचारों की पीढ़ियों के बीच एक महत्वपूर्ण पुल प्रदान किया।[13] डॉ. सिन्हा का अंतरिम सभापति पद अपने प्रतीकात्मक महत्व के कारण ऐतिहासिक रूप से भी महत्वपूर्ण है। उनका चयन संविधान सभा द्वारा निर्मित समावेशी और लोकतांत्रिक लोकाचार का प्रतिनिधित्व करता है। सिन्हा बिहार से एक वरिष्ठ नेता थे, एक ऐसा प्रांत जिसे औपनिवेशिक प्रशासनिक योजना में अक्सर उपेक्षित किया जाता था, और उनका उत्थान ब्रिटिश भारत के शहरी और कुलीन केंद्रों से परे नेतृत्व को विकेंद्रीकृत करने के शुरुआती प्रयास को दर्शाता है। इसके अलावा, वे उस समय एक जन आंदोलन के नेता या भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक केंद्रीय व्यक्ति नहीं थे, जिससे उनकी योग्यता, अनुभव और गैर-पक्षपातपूर्ण राजनेता की मान्यता के रूप में उनका चयन और भी उल्लेखनीय हो गया। इसने एक मजबूत संदेश भी दिया कि भारत का संविधान किसी एक पार्टी या एक विचारधारा का परिणाम नहीं होगा, बल्कि नेताओं की एक विस्तृत श्रृंखला की बुद्धि और प्रतिबद्धता पर आधारित एक सामूहिक राष्ट्रीय उद्यम होगा।

ऐतिहासिक रूप से, अंतरिम सभापति के रूप में सिन्हा की भूमिका पहले सत्र की अध्यक्षता करने के प्रक्रियात्मक कार्य से परे है। उनका छोटा कार्यकाल भारत के राजनीतिक परिवर्तन की संक्रमणकालीन प्रकृति को दर्शाता है उपनिवेशवाद से गणतंत्रवाद तक, पराधीनता से नागरिकता तक। वे कई बौद्धिक परंपराओं उदार संवैधानिकता, भारतीय राष्ट्रवाद और विधायी सुधारवाद के संगम पर खड़े थे और उनका सार संविधान सभा की प्रारंभिक वास्तुकला में लाया। भले ही उन्होंने बीआर अंबेडकर या अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर की तरह संवैधानिक लेखों के प्रारूपण में प्रत्यक्ष भूमिका नहीं निभाई, लेकिन उनका प्रभाव नैतिक और वैचारिक माहौल में महसूस किया गया जो सभा के गठन और शुरुआती काम को घेरे हुए था।[14]
संविधान सभा में सभापति की कुर्सी पर बैठने वाले पहले व्यक्ति के रूप में डॉ. सिन्हा की विरासत भारत के लोकतांत्रिक विकास में एक गौरवपूर्ण अध्याय है। यह संस्थागत भूमिकाओं में वरिष्ठता, अनुभव और नैतिक नेतृत्व को सम्मानित करने के लिए राष्ट्र की प्रारंभिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है। उस क्षण का महत्व, जब स्वतंत्रता संग्राम के एक वरिष्ठ राजनेता ने एक संप्रभु राष्ट्र के आधारभूत कार्य के पहले कदमों का मार्गदर्शन किया, भविष्य की पीढ़ियों को प्रेरित करना जारी रखता है। उन महत्वपूर्ण दिनों में उनकी संतुलित और गरिमामय उपस्थिति ने सदस्यों और पूरे राष्ट्र को याद दिलाया कि संविधान कानूनों और नियमों के बारे में जितना होगा, उतना ही मूल्यों और दृष्टि के बारे में भी होगा। पीछे मुड़कर देखें तो डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की अंतरिम सभापति के रूप में नियुक्ति एक प्रक्रियागत आवश्यकता से कहीं अधिक थी। यह भारत की संवैधानिक आकांक्षाओं की निरंतरता की याद दिलाता है पहले के सुधारवादी संघर्षों और स्वशासन की

अंतिम प्राप्ति के बीच एक पुल। उनका अंतरिम सभापतित्व भारत की संवैधानिक यात्रा में एक शक्तिशाली, भले ही अक्सर कम करके आंका गया हो, विरासत का प्रतीक है राष्ट्र निर्माण की सेवा में विनम्रता, स्पष्टता, संस्थागत अखंडता और नैतिक जिम्मेदारी का प्रतीक है।[15]

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची:-</u>

1. ऑस्टिन ग्रेनविल,भारतीय संविधान : राष्ट्र की आधारशिला,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2019,पृष्ठ सं-32

2. काश्यप सुभाष, भारत का संवैधानिक विकास और संविधान, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या- 4

3. भारतीय संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2015 ,खंड-1 पृष्ठ संख्या- 1

4. राय कौलेश्वर, बिहार का इतिहास,किताब महल,पृष्ठ संख्या-545

5. वही

6. भारतीय संविधान सभा के वाद विवाद के सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), लोकसभा सचिवालय दिल्ली, 2015, खंड-1,पृष्ठ संख्या-1

7. वही,पृष्ठ संख्या- 2

8. वही, पृष्ठ संख्या-13

9. वही, पृष्ठ संख्या-14

10. काश्यप सुभाष, भारत का संवैधानिक विकास और संविधान,हिंदी मध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-253

11. भारतीय संविधान सभा के बाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), लोकसभा सचिवालय नई दिल्ली, 2015,खंड-1, पृष्ठ संख्या-19

12. वर्मा वी.पी.,आधुनिक भारतीय राजनीति विचार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1990,पृष्ठ संख्या 253

13. भारतीय संसद की आधिकारिक वेबसाइट संविधान सभा का अभिलेखागार ीजजचेरूध्ध्सवोंईींण्दपबण्पदए पृष्ठ संख्या-184

14. ऑस्टिन ग्रेनविल, भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला,ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966, पृष्ठ संख्या-254

15. डॉ. सचिदानंद सिन्हा स्मारक समिति की रिपोर्ट, बिहार विधान परिषद पुस्तकालय, पटना, पृष्ठ संख्या-127